Chap-3

अध्याय-तृतीय

प्रसाद का जीवन-व्यक्तित्व और कृतियों का संक्षिप्त परिचय

जन्म-बाल्यकाल-शिक्षा-उत्तरदायित्व- मित्र गोष्ठी-दिनचर्या -व्यक्तित्व- शारीरिक गठन तथा वेशभूषा- कुशाग्र बुद्धि - स्वभाव- रुचि एवं व्यसन- धर्म में आस्था- निस्वार्थ साहित्य सेवा- मृत्यु ।

कृतियों का परिचय- चित्राधार- कानन-कुसुम-प्रेमपथिक-करुणालय- महाराणा का महत्त्व- झरना-आँसू-लहर-कामायनी ।

प्रसाद जी का जीवन और व्यक्तित्व :

जन्म :

प्रसाद जी का जन्म माघ शुक्ल दशमी सं० १९४६ वि० अर्थात् १८८९ ई० में काशी में हुआ था । इनके पिता का नाम देवीप्रसाद और माता का नाम श्रीमती मुन्नीदेवी था । देवीप्रसाद जी के दो पुत्र और तीन पुत्रियों में से प्रसाद जी सबसे छोटे थे ।

बाल्यकाल :

प्रसाद जी रईस परिवार में उत्पन्न हुए थे । इसलिए इनका बचपन बड़े लाड़-प्यार से गुजरा । इनको बचपन में 'फारखंडी' के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि ह यह अपने माता-पिता की वैद्यनाथ धाम के फारखंड की आराधना के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे । इनका परिवार सुँघनी साहु के नाम से बहुत प्रसिद्ध था। सम्मान की दृष्टि से काशी के महाराजा के बाद इसी परिवार का नाम आता था, जो कि अपनी दानशीलता और समृद्धि के कारण बहुत प्रसिद्ध था । उनके दादा बाबू शिवरत्न साहु तो बहुत ही दानी थे । वह प्रात:काल जब गंगा स्नान से वापिस लौटते थे तब अपना कम्बल और लौटा तक दान में दे आते थे । इसी कारण लोग इन्हें आदर से छोटे महादेव कहते थे । (बड़े महादेव काशी के राजा को कहा जाता था) कोई भी विद्वान, कवि, पंडित,ज्योतिष, गायक, कलाकार जो काशी के राजा के दरबार में आता था वह सुँघनी साहु परिवार से मिले बिना वापिस नहीं लौटता था ।

शिक्षा :

प्रसाद जी ने अपनी शिक्षा की शुरूआत गोवर्द्धनसराय मोहल्ले की छोटी

सी पाठशाला से की । इनकी नियमित रूप से शिक्षा केवल सातवीं कक्षा तक ही हो पायी थी । अपने पिता देवी प्रसाद जी की असमय मृत्यु हो जाने के कारण यह स्कूली शिक्षा से वंचित रह गए । परन्तु फिर भी इनके बड़े भाई शम्भूरत्न जी ने घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी आदि पढ़ाने के लिए शिक्षक की व्यवस्था की थी । 'रसमयसिद्ध' (स्व० सोहनीलाल) प्रसाद जी के गुरू थे ।

उत्तरदायित्व :

प्रसाद जी का बाल्यकाल तो बहुत ही लाड़-प्यार से व्यतीत हुआ था परन्तु अभी वह बारह वर्ष के ही हुए थे कि इनके पिता देवीप्रसाद का निधन हो गया । पन्द्रह वर्ष की आयु में इनकी माता जी भी परलोक सिधार गयी । इतना ही नहीं सत्रह वर्ष की छोटी सी उम्र में ही उन पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा । बेचारे प्रसाद जी के परिवार में केवल उनकी विधवा भाभी बची थी । घर का सारा उत्तरदायित्व उनके कंधों पर आ पड़ा । घर की स्थिति पहले जैसी नहीं रही थी । तम्बाकू का व्यापार नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था, पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे के लिए परिवार में मुकदमेबाजी चल रही थी जिसके परिणामस्वरूप लाखों रूपये खर्च हो रहे थे और घर की स्थिति दिन- प्रतिदिन गिरती जा रही थी । परिवार पर लाखों रूपयों का कर्ज चढ़ गया था । इन सब परिस्थितियों से प्रसाद जी को निपटना था । प्रसाद जी ने इन परिस्थितियों का डटकर मुकाबला किया और वे १९३०-३१ ई० तक सारे ऋण से मुक्त हो गये ।

प्रसाद जी ने तीन विवाह किये । उनका पहला विवाह बीस वर्ष की

आयु में हुआ, परन्तु विवाह के दस वर्ष बाद इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इसके पश्चात प्रसाद जी ने दूसरा विवाह किया, जब कि वे विवाह नहीं करना चाहते थे। यह उनकी विधवा भाभी का अनुरोध था। दुर्भाग्य से उनकी दूसरी पत्नी का भी देहांत हो गया। इसके बाद प्रसाद जी ने विवाह न करने का निश्चय किया। पुन: भाभी के आग्रह करने पर इन्होंने तीसरा विवाह कमला देवी से किया और इसी से पुत्र रत्नशंकर उत्पन्न हुए।

मित्र गोष्ठी :

प्रसाद जी को अपने मित्रों से बहुत प्रेम था। इनके अंतरंग मित्र बहुत ही कम थे। रायकृष्णदास, विनोद शंकर व्यास, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, पंडित केशवप्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण सिंह और केदारनाथ पाठक इनके अंतरंग मित्र थे। इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और प्रेमचन्द से भी इनकी अच्छी मित्रता थी। यह सभी मित्र हर रोज संध्या को प्रसाद जी की नारियल बाजार वाली दूकान पर इकट्ठे होते थे और खूब गपशप करते थे।

दिनचर्या :

प्रसाद जी की दिनचर्या इस प्रकार से थी- वह प्रात:काल निकट के बेनिया बाग में टहलने के लिए जाया करते थे। वहीं पर मुंशी प्रेमचन्द, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ भी इस बाग में नियमित रूप से घूमने आते थे। वहीं पर साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी प्रकार के वाद-विवाद हुआ करते थे। घर आकर दूध पीते और अपने सुर्ती-जर्दा के प्राचीन आनुवंशिक व्यवसाय की देखभाल में लग जाते। व्यावसायिक कार्यों से निवृत्त होकर तैल मालिश करते फिर स्नान के अनन्तर व्यायाम और फिर दोपहर को बारह बजे भोजन करके सो जाते।

दो-तीन बजे कारखाने आते और संध्या होते ही स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी नारियल-बाजार वाली दूकान पर पहुंच जाते । वहीं पर उनकी मित्र-मण्डली एकत्रित होती, उसमें खूब कह-कहे लगते और अनेक प्रकार की वार्तायें होती । दस बजे तक घर वापिस आकर भोजन करके रात देर तक अध्ययन करके सो जाते ।

प्रसाद जी का व्यक्तित्व- शारीरिक गठन तथा वेशभूषा :

प्रसाद जी अपने शरीर का विशेष ध्यान रखते थे । वह प्रतिदिन कसरत करते थे जिसके कारण इनका शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुगठित और सुडौल था । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में 'वे अधिक ऊंचे न थे, किन्तु उनका पुष्ट और सुसंगठित शरीर था । गोरे मुख पर मुस्कान सदैव खेला करती थी ।'[१] डॉ० विनोद शंकर व्यास इनके शारीरिक गठन के विषय में लिखते हैं -'प्रसाद जी का मध्यम श्रेणी का कद था । गौर वर्ण, गोल मुँह, दांत सब एक पंक्ति में, हंसने में बहुत ही स्वाभाविक मालूम पड़ते थे ।'[२] डॉ० सुरेन्द्र माथुर के मतानुसार-'असाधारण विभूति, गौरवर्ण, भव्य ललाट, विशाल नेत्र, देवता की भांति विशाल वक्षस्थल, सुगठित शरीर, मादक ध्वनि, निर्लेप आकृति में भव्य- यह है प्रसाद जी की तस्वीर जो काव्य, नाटक, कहानी के क्षेत्र में न भुलाई जा सकने वाली कीर्ति अर्जित कर चुके हैं ।'[३]

प्रसाद जी की वेशभूषा बहुत सादी थी । किशोरावस्था में वे प्राय: घर से बाहर निकलने पर शेरवानी तथा पाजामा पहनते थे , और सिर पर लाल व हरी चुन्दरी की लट्टूदार पगड़ी पहनते थे ।[४] यौवनावस्था में प्रसाद जी ढाका के मलमल का कुरता और शान्तिपुरी धोती पहना करते थे, परन्तु बाद में

प्रसाद जी ने खद्दर भी पहनना शुरू कर दिया था । सर्दियों में वे सुंघनी रंग के पट्टू का कुरता तथा सकरपारे की सीयन का रूईदार ओवरकोट पहना करते थे, आंखों पर चश्मा और हाथ में डंडा ।[५] यह था प्रसाद जी का व्यक्तित्व जो किसी को भी अपनी ओर अनायास ही आकर्षित कर लेता था ।

कुशाग्र बुद्धि :

प्रसाद जी कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे । डॉ० प्रेमशंकर के मतानुसार - वे उन इने-गिने साहित्यकारों में थे, जिन्हें एक स्वस्थ शरीर में एक स्वस्थ मस्तिष्क प्राप्त हुआ था ।[६] बाल्यकाल में उन्होंने उपनिषदों और वैदिक साहित्य का अच्छा अध्ययन कर लिया था । प्रसाद जी ने नौ वर्ष की आयु में ही 'लघु कौमुदी' और 'अमर कोश' को कण्ठस्थ कर लिया था । नौ वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपने गुरु रसमयसिद्ध(स्वर्गीय सोहनीलाल) को कविता लिखकर आश्चर्यचकित कर दिया था । वह कविता इस प्रकार से है :-

> हारे सुरेस रमेस धनेस, गनेसहुँ सेस न पावत पारे ।
> पारे हैं कोटिक पातकी पुंज, 'कलाधर' ताहि छिनों बिच तारे ।।
> तारेन की गिनती सम नाहिं, सुबेते तरे प्रभु पापी बिचारे ।
> चारे चले न विरंचहि के, जो दयालु है संकर नेक निहारे ।।

इतना ही नहीं उनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचय इस घटना से भी मिलता है । उन्होंने छोटी सी उम्र में ही समस्यापूर्ति करना शुरू कर दिया था ।एक बार उनके घर में कविगण इकट्ठे हुए तो आपस में 'अँखियाँ अब तो हरजाई भई' समस्या पर विचार कर लो । प्रसाद जी ने तुरन्त इस समस्या की पूर्ति कर दी जिसे सुनकर सभी कविगण आश्चर्यचकित रह गए ।

भई ढीठ फिरै चल चंचल है, यह रीति 'प्रसाद' चलाई नई ।
नहीं देखी मनोहरता कतहूँ, थिरता इनमें नहि पाई गई ।
गई लाज स्वरूप सुधा छबि कै, न तबौ इनकी कुटिलाई गई ।
गई खोजत और ही ठौर तुम्हें, अँखियाँ अब तो हरजाई भईं ।

पन्द्रह वर्ष की आयु में ही प्रसाद जी ने कविता, कहानी और नाटक लिखना शुरू कर दिया था । यह प्रसाद जी की कुशाग्र बुद्धि का ही कमाल था कि उन्होंने अल्प आयु में ही उत्तराधिकार में मिले लाखों के कर्ज, तम्बाकू का गिरता हुआ व्यापार और पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे के लिए चल रहे कलह को बड़ी ही खूबी से सम्भाला और इन सब मुसीबतों का डटकर मुकाबला किया और शीघ्र ही इन सबसे छुटकारा पा लिया ।

स्वभाव :

प्रसाद जी स्वभाव से बहुत ही शांत थे । वे कभी भी किसी वाद-विवाद में नहीं उलझते थे तथा किसी को भी दु:खी और अपमानित करना तो उनके स्वभाव में ही नहीं था । डॉ० विनोद शंकर व्यास के शब्दों में -' मैंने अपने इतने दिनों के लम्बे साथ में उन्हें सर्वदा मृदुभाषी, हँसमुख, मिलनसार, सहृदय और व्यवहार कुशल पुरुष ही पाया ।'[7]

प्रसाद जी को कभी भी किसी पर क्रोध नहीं आता था । वे आलोचकों से भी बहुत अच्छी तरह से पेश आते थे । डॉ० विनोदशंकर व्यास जी लिखते हैं - ' मैंने तो यहाँ तक देखा कि जिन लोगों ने उनकी रचनाओं की तीव्र आलोचना लिखी है, उनके प्रति भी प्रसाद जी कोई द्वेष नहीं रखते थे । सामना होने पर मुस्करा कर सज्जनोचित रूप से पेश आना और उस आलोचना के सम्बंध में

भूल से एक शब्द अपनी ज़बान पर न लाना उनकी विशेषता थी।[८] परन्तु कभी- कभी वे क्रोधित भी हो जाते थे।

प्रसाद जी संकोची स्वभाव के थे। वे कभी भी किसी अनजान व्यक्ति से खुलकर बात नहीं करते थे परन्तु अपने अन्तरंग मित्रों से तो खूब मजाक करते थे और ठहाका मारकर जोर से हँसते भी थे। किसी को चिढ़ाने में तो इन्हें बहुत ही आनन्द आता था। डॉ० राजेन्द्र नारायण शर्मा प्रसाद जी के विषय में लिखते हैं -' बेनिया पार्क में टहलते हुए प्राय: गोपालराम गहमरी को खूब चिढ़ाया करते थे, फिर उनकी जली-कटी बातों में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।[९] डॉ० सुरेन्द्र माथुर के अनुसार- ' वे बड़े ही मिलनसार, मृदु, विनोद-प्रिय, आत्म-विश्वासी, शालीन, व्यवहार कुशल व्यक्ति थे।[१०]

चाकचिक्य से तो उन्हें बहुत ही घृणा थी। किसी सभा आदि में जाना तो उन्हें बिल्कुल भी पसन्द नहीं था।

रुचि एवं व्यसन :

प्रसाद जी को अनेक प्रकार के शौक थे। सबसे पहला शौक उन्हें शतरंज खेलने का था। वे अपने मित्रों के साथ शतरंज बहुत चाव से खेलते थे। नौका बिहार करने में भी इन्हें विशेष आनन्द आता था। संध्या के समय कई बार वे अपने प्रिय मित्रों के साथ गंगा में नौका -बिहार करते हुए सारनाथ जी तक भी चले जाया करते थे। कुश्ती लड़ने का भी उन्हें बहुत शौक था। उन्होंने एक बार कुश्ती के विशेषज्ञ को भी परास्त कर दिया था। वे एक हजार से भी अधिक दण्ड बैठकें नित्य किया करते थे।

इसके अतिरिक्त फूलों से तो प्रसाद जी को बहुत ही लगाव था । उन्हें गुलाब, जूही, बेला, रजनीगंधा और चमेली आदि पुष्प बहुत ही पसन्द थे । इन सब फूलों का उन्होंने सुन्दर बगीचा बनाया था । प्रसाद जी का बहुत-सा समय इस बगीचे में ही व्यतीत होता था । डॉ० सुरेन्द्र माथुर के अनुसार- "अपने मकान के समक्ष लगाये बगीचे में बैठकर विहंसते फूलों की श्री सुषमा में प्रसाद जी अपने को भी भूल जाते थे ।"[११] इन सबके अलावा प्रसाद जी सिनेमा देखने के भी शौकीन थे । परन्तु महान लेखक जैसे टालस्टाय, ड्यूमाह्यूगो की रचनाओं के आधार पर बनाई गयी फिल्में ही देखते थे ।

प्रसाद जी को तरह-तरह के व्यंजन बनाने और खाने का भी शौक था । विनोद शंकर व्यास के शब्दों में-"प्रसाद जी भोजन के बड़े शौकीन थे । वह स्वयं अपने हाथ से अच्छा खाना बना लेते थे । एक बार बगीचे की सैल थी । मंडली में २०-२५ आदमी थे । भोजन और ठंढाई का पूरा प्रबन्ध था । दाल, चावल अलग- अलग हांडियों में चढ़ गया । प्रसाद जी गोभी, आलू, मटर की तरकारी और चूरमे का लड्डू बनाने में व्यस्त हो गए । बड़े उत्साह से उस दिन उन्होंने बनाया था । उनके बनाये हुए पदार्थ इतने स्वादिष्ट थे कि आज तक भूले नहीं हैं । उसके बाद तो अनेक अवसर आये, लेकिन वह तरकारी बड़ी सुस्वाद बनी थी । मुझे उसी दिन पता लगा कि प्रसाद जी भोजन बनाने में भी कुशल हैं ।"[१२] प्रसाद जी मांस- मदिरा से दूर ही रहते थे । पान खाने का तो उन्हें बहुत ही शौक था ।

धर्म में आस्था :

प्रसाद जी की धर्म में गहरी आस्था थी । वे शिव के उपासक थे तथा शिवरात्रि का उत्सव तो वे बड़ी ही धूम-धाम से मनाया करते थे । इनके घर

के सामने ही शिवालय था, जिसे इनके पूर्वजों ने बनवाया था । प्रसाद जी प्रतिदिन भक्ति-भावना अर्पित करने के लिए उस शिवालय में जाया करते थे । कभी- कभी प्रसाद जी विश्वनाथ जी के मंदिर में जाते थे । वे अपने आराध्य शिव के विरोध में एक शब्द भी नहीं सुनते थे । एक बार एक महाशय ने प्रसाद जी की धार्मिकता पर आघात किया तो प्रसाद जी से सहन नहीं हुआ । किसी के कहने पर कि तुम्हारा शिव क्या कर सकता है इस पर प्रसाद जी को इतना क्रोध आया कि उन्होंने एक थप्पड़ जोर से उसकी गाल पर दे मारा और कहा- ~~-इस-घटना-से~~ ' मेरा शिव यह कर सकता है ।' इस घटना से पता चलता है कि प्रसाद जी की धर्म में कितनी गहरी आस्था थी । डॉ० मुदीराज के अनुसार - ' धार्मिक संस्कार प्रसाद के रक्त में घुले- मिले थे । वंशानुगत परंपरा से प्राप्त शैव धर्म में आस्था को अपनी मेधा और अध्ययन से प्रसाद ने आत्मोपलब्धि का माध्यम बना लिया । यहाँ पर, दो- तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं । शैव धर्म प्रसाद को आनुवंशिकता के तौर पर मिला था । उनके वातावरण में भी यह घुला- मिला था । व्यक्तित्व की विकास- प्रक्रिया के दो प्रमुख तत्त्वों - आनुवंशिकता और वातावरण- से प्रदत्त और परिपुष्ट धार्मिक आस्था यदि प्रसाद के व्यक्तित्व- निर्माण में अधिकाधिक भूमिका सम्पन्न करता है तो स्वाभाविक ही है । प्रसाद की धार्मिक आस्था ही एकमात्र ऐसी वस्तु है जिसमें प्रतिरोध कहीं , किसी ओर से नहीं आने पाया । धार्मिक वातावरण में वे पले-बढ़े थे । उनके शिक्षण में धार्मिक ग्रन्थों का प्राधान्य रहा । नियति ने जो मर्मान्तिक आघात उन्हें दिये उससे और सब वस्तुएँ यथा समृद्धि, विलासोपकरण, पैतृक सम्पत्ति व व्यवसाय आदि छिन गयी किन्तु धार्मिक आस्था नही विचलित हुई, अपितु यह और दृढ़ हो गयी । नियति से पराजित होकर प्रसाद अपने आप में सिमट गये । इस 'सिमटने' में धार्मिक आस्था ने योग दिया ।' [१३]

निस्वार्थ साहित्य-सेवा :

प्रसाद जी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी निस्वार्थ साहित्य-सेवा । उन्होंने बिना किसी स्वार्थ के हिन्दी साहित्य की खूब सेवा की । प्रसाद जी ने कभी भी किसी सभा या सम्मेलन में जाकर अध्यक्ष पद स्वीकार नहीं किया । इतना ही नहीं पारितोषिक रूप में मिली धन-राशि को भी उन्होंने कभी अपने कार्य के लिए नहीं लगाया । डॉ० विनोद शंकर व्यास जी लिखते हैं -" प्रसाद जी ने अपने जीवन में पुरस्कार रूप में एक पैसा भी किसी पत्र-पत्रिका से नहीं लिया । वह निस्वार्थ भाव से साहित्य- सेवा करते रहे । हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ५०० रु० का और काशी नागरी प्रचारिणी सभा से २०० रु० का पुरस्कार उन्हें मिला था परन्तु यह ७०० रु० भी उन्होंने काशी नागरी प्रचारिणी सभा को अपने भाई के स्मारक स्वरूप दान दे दिया ।" [१४]

प्रसाद जी की मृत्यु :

प्रसाद जी लखनऊ में प्रदर्शनी देखने गये और वहाँ से लौटते ही बीमार पड़ गये । सभी इसी शक में रहे कि इन्हें साधारण सा ज्वर है । परन्तु बाद में इनकी जाँच करवाई गयी तब पता चला कि इन्हें राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोग ने जकड़ लिया है । बीमारी के कारण वह दिन- प्रतिदिन कमजोर होते गये। जीवन के अंतिम समय में चर्मरोग ने भी इन्हें घेर लिया । अन्त में इनकी मृत्यु काशी में १४ नवम्बर १९३७ को चार बजकर दस मिनट पर हो गयी ।

कृतियों का संक्षिप्त परिचय :

प्रसाद जी अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे । इन्होंने नौ वर्ष की

आयु से ही कवितायें लिखना आरम्भ कर दिया था । इनका रचनाकाल १६०६ ई० से १६३५ ई० तक रहा । इन छब्बीस वर्षों में इन्होंने नाटक, उपन्यास, निबंध, कहानी, कविता आदि सभी कुछ लिखा । जिस समय इन्होंने काव्य रचना करना प्रारंभ किया था उस समय गद्य की भाषा खड़ी बोली थी परन्तु काव्य भाषा ब्रज-भाषा ही थी अतएव, प्रसाद जी ने भी ब्रजभाषा में ही कवितायें लिखना प्रारंभ किया । प्रसाद जी की प्रारंभिक रचना `चित्राधार` ब्रजभाषा में ही गयी है । परन्तु धीरे- धीरे ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया । प्रसाद जी ने परिस्थितियों के अनुरूप खड़ी बोली में ही काव्य रचना करना प्रारम्भ किया । उनकी महान कृति `कामायनी` खड़ी बोली का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है ।

अब हम विकास क्रम की दृष्टि से प्रसाद जी की काव्य कृतियों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं :-

(१) चित्राधार
(२) कानन- कुसुम
(३) प्रेमपथिक
(४) करुणालय
(५) महाराणा का महत्त्व
(६) झरना
(७) आँसू
(८) लहर
(६) कामायनी

(१) चित्राधार :

चित्राधार प्रसाद जी का प्रारंभिक संग्रह है । इसका प्रथम संस्करण सन् १६१८ ई० में प्रकाशित हुआ था जिसमें बे ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों की ही कवितायें थीं । प्रथम संस्करण के छपने के दस वर्ष बाद प्रसाद जी ने इसमें संशोधन करके इसका दूसरा संस्करण १६२८ ई० में निकाला । इसमें केवल ब्रजभाषा की ही कविताओं को रखा गया । दूसरे संस्करण में पिछली कुछ कविताओं को निकाल दिया गया और कुछ में संशोधन करके दुबारा संकलित किया गया । इसमें कविताओं के अतिरिक्त `उर्वशी` और `बभ्रुवाहन` दो चंपू , `प्रायश्चित` और `सज्जन` दो लघु नाटक, ब्रह्मर्षि,` `पंचायत`,`प्रकृति सौन्दर्य`, `सरोज` और भक्ति शीर्षक निबंध संकलित हैं । कवितायेँ दो वर्गों में विभाजित हैं - प्रबंधात्मक और मुक्तक । पहले वर्ग में `अयोध्या का उद्धार,` `वन-मिलन` और `प्रेमराज्य` आदि आख्यानक कवितायें आ जाती हैं । मुक्तक कविताओं को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है - `पराग` और `मकरन्द- बिन्दु` ।

`चित्राधार` में प्रकृति सौन्दर्य, प्रेम और भक्ति से सम्बंधित अनेक कवितायें हैं ।

प्रकृतिपरक कवितायें :

जब प्रसाद जी ग्यारह वर्ष के थे तब उन्होंने अपनी माता जी के साथ धार क्षेत्र, चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, ओंकारेश्वर, उज्जैन, पुष्कर, ब्रज आदि प्राकृतिक स्थलों की लम्बी यात्रा की थी । प्रकृति का विशाल सौन्दर्य देखकर वे उसके प्रति आकर्षित हुए । `चित्राधार` में वर्णित प्रकृति सौन्दर्य की प्रेरणा प्रसाद जी को इन्हीं यात्राओं से मिली थी ।`चित्राधार` में `प्रकृति सौंदर्य` नामक निबंध है जिससे उनकी प्रकृति विषयक धारणा का ज्ञान सहज ही

हो जाता है । उनके मतानुसार- 'प्रकृति सौंदर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है, अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा सा नमूना है, या इसी को अद्भुत रस की जन्मदातृ कहना चाहिए । सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना तो मानो ईश्वर के गुण की समालोचना करना है ।'[१५]

'चित्राधार' में संकलित 'शारदीय शोभा', 'इन्द्रधनुष', 'उद्यान लता', 'चन्द्रोदय', 'प्रभात कुसुम', 'संध्यातारा', 'शरदपूर्णिमा', 'वर्षा में नदी कूल', 'नीरद', 'रसाल' आदि कविताएँ और 'मकरन्द- बिन्दु' के कुछ छन्द भी प्रकृति सौंदर्य से ओत प्रोत हैं । संध्या का वर्णन कवि इन शब्दों में करता है —

विलसत सान्ध्य दिवाकर की किरनै माला सी ।
प्रकृति गले में जो खेलति है बनमाला सी ।।[१६]

चन्द्रमा की सुन्दरता का चित्रण देखिये —

धवल मनोहर दृष्टि सुखदायक हिय अनुराग ;
मनहु सुधा के बिम्ब में, लपट्यो नलिन पराग ।
नवघन सुन्दर श्याम उर, मनहुं हीरका भास ;
कालिन्दी जल नील में के अरविंद विकास ।[१७]

इनके अतिरिक्त प्रसाद जी ने 'वर्षा में नदीकूल', 'नीरद' और 'इन्द्रधनुष' आदि कविताओं में वर्षा ऋतु के सौंदर्य को अंकित किया गया है ।

बसंत ऋतु का वर्णन कवि इस प्रकार से करता है —

छोह छरिली ने मन औरै कर दीनै ।
रे बसन्त रस भीने कौन मन्त्र पढ़ि दीनै तू ।[१८]

इसी प्रकार से कवि रसाल वृक्ष का बखान करता है जो कि ग्रीष्म ऋतु में शीतल छाया प्रदान करता है -

ग्रीषम निदाघ महँ शीतल सुछाया ।
श्रमित पथिक कह देहु मन भाया ।।
हरित सघन रूप तव निरखत ।
पथिक हृदय महँ सुख बरषत ।। [१९]

हिमालय की सुन्दरता को प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है -

अरुण विभा विलसत-हिमश्रृंग मुकुटवर छाजत ।
मालिनी मन्द प्रवाह सुखद-सुदुकूल विराजत ।।
तरुगन राजिकतहुँ- मरकत- हारावलि लाजै ।
सांचहु भूधर नृपति समान हिमालय राजै । [२०]

प्रेमपरक कवितायें - द्विवेदी युग में लौकिक प्रेमपरक कवितायें लिखना अनैतिक माना जाता था । परन्तु प्रसाद जी ने इसकी कोई परवाह न कर वैयक्तिक प्रेमानुभूतियों की स्वच्छन्द अभिव्यंजना करके अद्भुत साहस का परिचय दिया । `चित्राधार` में `विदाई,` `नीरवप्रेम`, `विस्मृत प्रेम` और `विसर्जन` आदि कवितायें प्रेमभावना से युक्त हैं ।

प्रेमी अपने प्रिय से विनती करता है कि तुम मेरे जीवन का आधार हो और मेरे हृदय को प्रेम से भर दो -

कीजिये जो रंजित तो जीवन अब अधार ।
मेरे हिय अनुराग भरि नवरंग भीजिये ।। [२१]

प्रिय की निर्दयता पर उलाहना देता हुआ कहता है -

भुज उठाइ तुम्हें मरन हित अंक में जब प्रान ।
हम चलें तुम हटो पीछे, करत कुरि मुस्क्यान ,
हम कर अनुसरण तुम्हरो, तुम चलो मुख फेरि ।।[२२]

'विस्मृत प्रेम' में भी प्रेम से सम्बंधित अनेक उदाहरण हैं । प्रिया द्वारा भुला दिए जाने पर प्रेमी अपनी दशा का वर्णन करता है कि ऊपर से तो वह बहुत प्रसन्न दिखलाई पड़ता है, परन्तु भीतर से वह पूर्णतया टूट चुका है -

सब लखात वहै छवि पूर है ।
तदपि क्यों हिय है चकचूर है ।।
+ + +
सुमुँहदी जिमि ऊपर है हरि ।
अरुणिमा तऊ भीतर है भरी ।।[२३]

'विसर्जन' शीर्षक कविता में तो प्रेमी अपना सब कुछ प्रिय के चरणों में न्योछावर करने के बाद उसकी स्मृति तक को भी भुला देने का दृढ़ निश्चय कर लेता है -

जाहु विस्मृति अस्त शैल निवास को चित चाहि ।
शान्ति की नव अरुण कान्ति प्रकाशिहैं हिय माँहि ।।[२४]

भक्तिपरक कविताएँ :

चित्राधार में 'भक्ति' शीर्षक से एक लघु निबंध के अतिरिक्त भक्ति भाव से युक्त अनेक कवितायें हैं । जैसे- 'पराग' शीर्षक में 'अष्टमूर्ति', 'विनय', 'विभो'

और 'मकरन्द बिन्दु' के कुछ छन्द भक्ति से ही सम्बंधित हैं। प्रसाद जी भक्ति के सम्बंध में अपने विचार इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं - 'श्रद्धा का पूर्णरूप भक्ति है, भक्ति बिना पहचान होती नहीं और बिना मिले जाना भी नहीं जाता इसी से कहते हैं कि इनका परस्पर घना सम्बंध है।'[२५]

प्रसाद जी शिव के भक्त थे। उन्होंने 'विभो' और 'विनय' कविताओं के प्रारंभ में ही शिव की महिमा का गुणगान किया है और उसके विश्व-व्यापक रूप को नमस्कार किया है -

संसार को सदय पालत जौन स्वामी।
वा शक्तिमान परमेश्वर को नमामी।।[२६]

वह ईश्वर से विनय करता है कि मैं पापी हूँ फिर भी तेरा दास हूँ। हे ईश्वर मेरे हृदय में तुम्हारा ही निवास और तुम्हारे ही प्रकाश से मेरा हृदय प्रकाशित हो -

हौ पातकी तदपि हौं प्रभुदास तेरो।
हौ दासनाथ तव है हिय आस तेरो।।
है आस चित्त महँ होय निवास तेरो।
होवै निवास महँ देव! प्रकाश तेरो।।[२७]

कवि विनती करता है कि मेरे ही नहीं अपितु इस संसार में रहने वाले सभी प्राणियों के दुख दूर कर दो -

दुखी जनो के दुख को निवारिकै,
सुखी करै धर्म महाप्रचारि कै।[२८]

इतना ही नहीं कवि कामना करता है कि वह अपना सारा जीवन भगवान के चरणों में ही बीता दे -

तुम चरनन में लौटि, जगत के लील पायँ दै रहि हौं ।[२९]

हे ईश्वर आप मुझ जैसे पापियों के स्वामी हैं, मेरे सभी दुर्गुणों को भूलकर अपने चरणों में मुझे सहारा दीजिए -

हे पावन पतितन के सरबस दीन जनन के मीत ।
सब बिसारि दुर्गुन निज जनके देहु चरण में प्रीति ।।[३०]

तो कहीं कवि भगवान की निष्ठुरता पर क्रोधित हो उठता है और उसे गालियाँ तक सुनाने को तैयार हो जाता है -

गालियां सुनोगे जोपे आज याते संकित है ।
तोरो न मनोमुकुल माल कांचे ताग सौं ।।[३१]

कवि ने सांप्रदायिकता पर भी बड़ा आघात किया है । इनके मतानुसार आपसी झगड़े बेकार हैं । ईश्वर तो सर्वव्यापी है उसका निवास तो संसार के हर कण में है -

छिपि के झगड़ा क्यों फैलायो ।[३२]

डॉ० वीणा माथुर प्रसाद जी की भक्ति सम्बंधी कविताओं के विषय में लिखती हैं - "भक्तिपरक कविताओं में ईश्वर के सौंदर्य तथा उसकी महत्ता एवं विश्व-व्यापकता आदि का वर्णन है । साथ ही उनमें विश्व कल्याण की कामना भी निहित है किन्तु भक्त कवियों के समान दैन्य एवं लघुत्व की भावना यहाँ परिलक्षित नहीं होती ।"[३३]

कानन- कुसुम :

कानन-कुसुम के पांच संस्करण प्रकाशित हुए । इसका पहला संस्करण सन् १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ था । प्रथम संस्करण पर प्रकाशन की तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है । परन्तु कानन-कुसुम के तृतिय संस्करण में प्रथम संस्करण की तिथि १९१३ ई० बतायी गयी है । इसी के आधार पर प्रथम संस्करण की तिथि १९१३ ई० ही मानी जाती है । इस संस्करण में चालीस स्फुट कवितायें हैं । `पराग` शीर्षक कविता में पच्चीस कवित्त, सवैये, पद और एक खड़ी बोली में लिखी गयी गज़ल भी है । परन्तु बाद के संस्करणों में इस गज़ल को सम्मिलित नहीं किया गया । प्रथम संस्करण की कविताएं खड़ी बोली और ब्रजभाषा में लिखी गयी हैं ।

`कानन-कुसुम` का दूसरा संस्करण `चित्राधार` के अंग रूप में १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ । इस संस्करण में पूर्ववर्ती कविताओं के अतिरिक्त बहुत सी नयी कविताओं को भी संगृहीत किया गया ।

दो संस्करणों के पश्चात इसका तीसरा संस्करण १९२९ ई० में छपा । इस संस्करण में बहुत से संशोधन भी किए गए । सबसे पहले इसमें ब्रजभाषा की कविताओं को निकाल कर `चित्राधार` में जोड़ दिया गया केवल खड़ी बोली की कविताओं को ही इस कृति में रहने दिया गया । कुछ कवितायें जैसे- `खोलोद्वार`, `पाईबाग`, `निवेदन`, `कहो`, `प्रथम प्रभात`, `अनुनय`, `प्रियतम` आदि को निकालकर `झरना` में संकलित कर दिया गया । इनमें से `प्रथम प्रभात` `कानन-कुसुम` के इस संस्करण में भी संकलित है । इनके अतिरिक्त कुछ अप्रकाशित कविताएं जैसे- `महाकवि तुलसीदास`, `धर्मनीति` और `गान` को भी `कानन-कुसुम` में सम्मिलित

कर दिया । इसके पश्चात दो और संस्करण प्रकाशित हुए । `कानन-कुसुम` में प्रकृति, भक्ति और वेदना से युक्त अनेक कविताएँ हैं । प्रकृतिपरक कवितायें - `कानन-कुसुम` में `कोकिल`, `सरोज`, `नवबसंत`, `खंजन`, `एकांत में`, `प्रथम प्रभात`, `गंगा सागर`, `ग्रीष्म का मध्यान्ह`, `जलद-आवाहन`, `रजनीगंधा` और `दलित कुमुदिनी` आदि कविताओं में प्रकृति का सुन्दर वर्णन मिलता है ।

`ग्रीष्म का मध्यान्ह` में कवि तपती दोपहरी का वर्णन करता हुआ कहता है -

विमल व्योम में देव-दिवाकर अग्नि -चक्र से फिरते हैं
किरण नहीं, ये पावक के कण जगती-तल पर गिरते हैं
छाया का आश्रय पाने को जीव-मंडली गिरती है
चण्ड दिवाकर देख सती- छाया भी छिपती फिरती है ।[३४]

भयानक गर्मी से वृक्ष के हरे- हरे पत्ते भी मुरझा कर पृथ्वी पर गिर जाते हैं -

हरे- हरे पत्ते वृक्षों के तापित हो मुरझाते हैं
देखा देखी सूख-सूखकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं ।[३५]

`नवबसंत` में कवि ने सुख प्रदान करने वाली रात्रि का चित्रण इस प्रकार से किया है -

पूर्णिमा की रात्रि सुखमा स्वच्छ सरसाती रही
इन्दु की किरणें सुधा की धार बरसाती रहीं
युग्मयाम व्यतीत है आकाश तारों से भरा
हो रहा प्रतिबिम्ब-पूरित रम्य यमुना-जल भरा ।[३६]

`खंजन` शीर्षक कविता में शरद ऋतु के सौंदर्य को इस प्रकार से अंकित किया गया है -

शरद के हिम-बिंदुमानो एक में ढाले हुए
दृश्य गोचर हो रहे हैं प्रेम से पाले हुए
है यही क्या विश्ववर्षा का शरद साकार ही
सुन्दरी है या कि सुषमा का खड़ा आकार ही ।[३७]

हिमालय की सुन्दरता को इन शब्दों में प्रस्तुत करता है -

हिम-सर में भी खिले विमल अरविन्द हैं
कहीं नहीं है शोच, कहाँ संकोच है
चन्द्रप्रभा में भी गलकर बनते नदी
चन्द्रकान्त से ये हिम-खंड मनोज्ञ हैं ।[३८]

कवि ग्रीष्म से पीड़ित मन के ताप को कम करने के लिए बादलों को बुलाता है -

शीघ्र आ जाओ जलद । स्वागत तुम्हारा हम करें
ग्रीष्म से सन्तप्त मन के ताप को कुछ कम करें
है धरित्री के उर-स्थल में जलन तेरे बिना
शून्य था आकाश तेरे ही जलद । घेरे बिना ।[३९]

`प्रथम प्रभात` में प्रभातकालीन वातावरण का सुन्दर चित्र कवि ने अंकित किया है -

मनोवृत्तियाँ खग-कुल-सी थीं सो रही,
अन्त:करण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन-सा शान्त हृदय भी हो रहा,
वाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रही। [४०]

'कोकिल' कविता में कवि कोयल के मीठे स्वर का वर्णन करता है -

नया हृदय है, नया समय है, नया कुंज है
नये कमल-दल-बीच नया किंजल्क-पुंज है
नया तुम्हारा राग मनोहर श्रुति सुखकारी
नया कण्ठ कमनीय, वाणि वीणा-अनुकारी। [४१]

भक्तिपरक कविताएँ - 'कानन-कुसुम' में भक्ति भाव से युक्त कविताओं की संख्या अधिक है। 'प्रभो', 'वन्दना', 'नमस्कार', 'मन्दिर', 'करुणा-क्रन्दन', 'महाक्रीड़ा', 'भक्तियोग', 'विनय', 'याचना', 'प्रियतम' आदि कवितायें भक्ति से ही सम्बंधित हैं। कवि का विनय भाव ही अधिक मुखरित हुआ है।

'चित्राधार' की भाँति 'कानन-कुसुम' में भी कवि अपने आराध्य की अलौकिक शक्ति को नमस्कार करता है -

उस मंदिर के नाथ को, निरुपम निरमय स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व-गृहस्थ को। [४२]

'प्रभो' शीर्षक कविता में भी कवि ईश्वर की महिमा का गुणगान करता है -

विमल इन्दु की विशाल किरणें।
प्रकाश तेरा बता रही हैं
अनादि तेरी अनन्त माया
जगत् को लीला दिखा रही हैं। [४३]

कवि ईश्वर से विनती करता है कि हे ईश्वर तुम मेरे हृदय में बस जाओ ताकि हरसमय मैं तुम्हारा साथ पा सकूँ -

बना लो हृदय- बीच निज धाम
करो हमको प्रभु पूरन- काम
शंका रहे न मन में नाथ
रहो हरदम तुम मेरे साथ । [४४]

कवि के अनुसार ईश्वर तो विश्वव्यापी है वह संसार के हर कण में व्याप्त है फिर यह मानना कि भगवान मन्दिर में नहीं है बिल्कुल गलत है -

जब मानते हैं व्यापी जलभूमि में अनिल में
तारा-शशांक में भी आकाश में अनल में
फिर क्यों ये हठ है प्यारे । मन्दिर में वह नहीं है ।
वह शब्द जो 'नहीं' है, उसके लिए नहीं है । [४५]

मस्जिद, पगोडा और गिरिजाघर उसी की भक्ति-भावना के छोटे-बड़े नमूने हैं -

मस्जिद, पगोडा, गिरजा, किसको बनाया तूने
सब भक्त-भावना के छोटे-बड़े नमूने । [४६]

कवि ईश्वर से दया की भीख मांगता है -

करुणा-निधे, यह करुण क्रन्दन भी जरा सुन लीजिये
कुछ भी दया हो चित्त में तो नाथ रक्षा कीजिये
हम मानते, हम हैं अधम, दुष्कर्म के भी छात्र हैं
हम हैं तुम्हारे, इसलिये फिर भी दया के पात्र हैं । [४७]

प्रसाद जी ने वेदना का भी चित्रण प्रस्तुत किया है । इन्हें वेदना बहुत ही प्रिय है -

सुनो प्राण-प्रिय, हृदय-वेदना विकल हुई क्या कहती है
तब दु:सह यह विरह रात-दिन बेबु जैसे सुख से सहती है
मैं तो रहता मस्त रात-दिन पाकर यही मधुर पीड़ा
वह होकर स्वच्छन्द तुम्हारे साथ किया करती क्रीड़ा । ४८

'चित्रकूट', 'श्रीकृष्ण-जयन्ती', 'कुरूक्षेत्र', 'भरत' आदि आख्यानक कवितायें हैं ।

प्रेमपथिक :

प्रसाद जी की यह कृति दो रूपों में उपलब्ध होती है । इसका पहला संस्करण संवत् १९६२ में छपा था तब यह छोटी सी कृति थी और ब्रजभाषा में लिखी गयी थी । इसका कुछ अंश 'इन्दु' में संवत १९६६ में प्रकाशित हुआ था । परन्तु आठ वर्ष के पश्चात 'प्रेमपथिक'' का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ । इसमें बहुत से संशोधन किए गए । बहुत सी कविताओं को इसमें जोड़कर कृति को दुगना कर दिया गया । इसकी भाषा भी खड़ी बोली कर दी गयी ।

'प्रेमपथिक' के पहले संस्करण (जो संवत १९६२ में छपा था) की केवल १३६ पंक्तियाँ ही आज प्राप्त होती हैं । परन्तु इन पंक्तियों मे ही सारी कथा स्पष्ट हो जाती है ।

'प्रेमपथिक' के दूसरे संस्करण (जो संवत १९७० में छपा था) में कथा आठ खंडों में विभाजित है । प्रत्येक खंड को तीन पुष्प चिन्हों द्वारा एक दूसरे से अलग किया गया है । इसका अन्तिम खंड अन्य खंडों से बड़ा है अर्थात् नौ पृष्ठों में दिया

गया है । इसमें एक छोटी सी प्रेमकथा का वर्णन किया गया है । इस कृति पर गोल्डस्मिथ के `हरमिट` का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । दोनों का कथानक एक जैसा है । इनमें एक दुखी और निराश प्रेम की कथा है । डॉ० गणेश खरे के शब्दों में `प्रेमपथिक पर गोल्डस्मिथ के `हरमिट` नामक प्रेमाख्यानक काव्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है । इसका हिन्दी अनुवाद भी श्रीधर पाठक ने `एकांतवासी योगी` शीर्षक से किया था जिसका प्रथम संस्करण १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ था । पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के डेजर्टेड विलेज` का `ऊजड़ग्राम` शीर्षक से भी अनुवाद किया था । प्रेमपथिक (ब्रजभाषा संस्करण) के प्रकाशित होने के लगभग एक वर्ष बाद `इन्दु` में प्रकाशित हुआ था । प्रसाद जी ने अपने `कवि और कविता` शीर्षक निबंध में कथामूलक कविता के उदाहरणरूप में ऊजड़ ग्राम` का उल्लेख किया है । यह तथ्य इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि वे गोल्डस्मिथ की इन रचनाओं से परिचित अवश्य रहे हैं । चौबीस वर्ष की अवस्था में संशोधित, परिवर्धित एवं खड़ी बोली में रूपांतरित `प्रेमपथिक` के वर्तमान संस्करण पर भी `हरमिट` का किंचित परिवर्तन के साथ प्रभाव वर्तमान है ।` [४६]

`प्रेमपथिक` में प्रसाद जी ने प्रेम की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है । उनके मतानुसार प्रेम पवित्र पदार्थ है । इस पर कपट की छाया तक नहीं पड़नी चाहिए -

प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा

\+ \+ \+

प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो । [५०]

प्रसाद जी ने सौंदर्य को ईश्वर का ही एक अंग माना है । सौंदर्य की परिभाषा इस प्रकार से की है -

क्षण भंगुर सौंदर्य देखकर रीझो मत, देखो । देखो ।।
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है ।

\+ + +

आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है । [५१]

प्रकृति के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं -

शारदचन्द्र गगन में सुन्दर लगा चमकाने पूर्ण प्रकाश ।
शुभ्र अभ्र की छाया उस पर से होकर चल जाती थी ।।
तब जैसे 'कन्दील' प्रकृति कौतुक-वश हो लटकाती थी ।
पूर्णचन्द्र की 'आंखमिचौनी' क्रीड़ा महा मनोहर थी ।। [५२]

मनुष्य जीवन में आने वाले सुख-दुःख से सम्बंधित भी अनेक उदाहरण हैं :-

वर्तमान सुख-दुःख में पड़कर हर्ष विषाद मानता जो ।
उपन्यास-लेखक है वह, परिणाम-स्थिति ही सच्ची है ।। [५३]

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी 'प्रेमपथिक' का मूल्यांकन इन शब्दों में करते हैं -

" इसमें प्राकृतिक वर्णन मनुष्य की कहानी के लिए सुरम्य वातावरण बन गया है । और मानव सौंदर्य केवल कुतूहल की वस्तु न रहकर एक अनुपम त्याग की भावना में पर्यवसित हो गया है, प्रकृति के प्रेम से हटकर उनकी जिज्ञासा मनुष्यों के प्रेम में समाविष्ट हो गई है । जिज्ञासा का तार नहीं टूटता । इसी में कवि का विकास देखा जा सकता है । 'प्रेमपथिक' में कवि की मनुष्य प्रेम सम्बंधी जिज्ञासा का स्वरूप प्रकट हुआ है । यहां कवि एक तात्विक निष्कर्ष तक पहुँच सका है ।

प्रेम अनन्त है, उसका ओर-छोर नहीं है, उसकी परिणतिपूर्ण त्याग में है।'[५४]

करुणालय :

इस कृति का रचनाकाल १९१३ ई० है। परन्तु एक पृथक पुस्तक का रूप इसे १९२८ ई० में मिला। इससे पहले यह `चित्राधार` के प्रथम संस्करण में छप चुकी थी। `करुणालय` की भाषा खड़ी बोली है। यह एक छोटी सी कृति है तथा पांच दृश्यों में विभाजित है। हरिश्चन्द्र रोहित, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शुन: शेफ, अजीगर्त, शक्ति, मधुच्छन्द, ज्योतिष्मान आदि इसमें पुरुष पात्र हैं। तारिणी, सुव्रता इसमें नारी पात्र हैं। यह एक गीतिनाट्य है। प्रसाद जी के शब्दों में `यह दृश्य काव्य गीति नाट्य के ढंग पर लिखा गया है।'[५५] परन्तु कुछ विद्वानों के विचार इससे अलग हैं। उन्होंने इसे `गीतिरूपक`, `भाव-नाट्य`, `कथोपकथनात्मक पद्य बद्ध कहानी` आदि नामों से पुकारा है। `करुणालय` में एक पौराणिक कथा को पद्यबद्ध किया गया है। इसकी कथावस्तु को ऋग्वेद, तैत्तरीय संहिता, अथर्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, ब्रह्मपुराण आदि ग्रंथों से एकत्रित कर प्रसाद जी ने अपनी कल्पना द्वारा उसकी कथा को नये रूप में प्रस्तुत किया है। कृति का मुख्य उद्देश्य कुप्रथा नरबलि का विरोध करना है।

महाराणा का महत्त्व :

इस कृति का प्रकाशन कई बार हुआ। सबसे पहले यह १९१४ ई० में इन्दु में छपी थी और फिर १९१८ ई० में `चित्राधार` के प्रथम संस्करण के अंतर्गत इसका समावेश किया गया था। तीसरी बार अलग पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन १९२८ ई० में हुआ। यह ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी

छोटी सी कृति है । महाराणा प्रताप इस कृति के नायक हैं और अमरसिंह, कृष्ण सिंह, मुगल सेनापति रहीमखानखाना, बेगम, अकबर आदि इसके अन्य पात्र हैं । `करुणालय` की भांति यह कृति भी नाटकीयता के तत्व से ओतप्रोत है ।

इसमें प्रसाद जी ने महाराणा प्रताप की चारित्रिक विशेषताओं का गुणगान किया है । उन्हें आर्य जाति का तेज, सच्चा देशभक्त, भारतमाता का सच्चा सपूत, वीर, स्वाभिमानी, कुलमानी और शत्रु के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करने वाला बताया है । कवि ने महाराणा प्रताप की प्रशंसा इन शब्दों में की है -

कहो कौन है? -आर्य्यजाति के तेज सा ?
देशभक्त, जननी का सच्चा पुत्र है,
भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा
मसि मुख में ले अहो लेखनी क्या लिखे !
उस पवित्र प्रात: स्मरणीय सुनाम को ।
नहीं, नहीं, होगी पवित्र यह लेखनी
लिखकर स्वर्णाक्षर में नाम `प्रताप` का । [५६]

महाराणा प्रताप की वीरता का वर्णन इस प्रकार से किया है -

जैसे झपटे सिंह, वही विक्रम लिये
वीर `प्रताप` दहकता था दावाग्नि-सा
सत्य प्रिये ! मैं देख शूर-छवि वीर की,
होता था निश्चेष्ट, वाह कैसी प्रभा !

कितने युद्धों में मेरी निश्चेष्टता
हुई विजय का कारण वीर 'प्रताप' के,
क्योंकि मुग्ध होकर मैं उनको देखता ।[५७]

नारी सौन्दर्य का भी चित्रण कहीं- कहीं देखने को मिल जाता है -

कँपी सुराही कर की, छलकी वारुणी
देख ललाई स्वच्छ मुकुर कपोल में,
खिसक गई डर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध -सी लगी विमल आलोक की ।।[५८]

प्रकृति सौंदर्य का भी चित्रण कवि ने किया है। चाँदनी रात की सुन्दरता को कवि इस प्रकार से प्रस्तुत करता है -

तारा -हीरक-हार पहनकर, चन्द्रमुख -
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से ।[५६]

राष्ट्रीयता की भावना से सम्बंधित उदाहरण भी मिल जाते हैं -

जन्मभूमि के लिए, प्रजा सुख के लिए
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया ?
दुग्ध-फेन-निभ शय्या को यों छोड़कर
सूखे पत्ते कौन चबाता है कहो -
मातृभूमि की भक्ति, देशहित- कामना,
किसको उत्तेजित करती है, वे कहाँ ?[६०]

झरना :

प्रसाद काव्य में 'झरना' का महत्वपूर्ण स्थान है। इस कृति का पहला संस्करण १६१८ ई० में छपा था तब केवल पच्चीस कवितायें थी। परन्तु प्रथम संस्करण के नौ वर्ष पश्चात इसका दूसरा संस्करण १६२७ ई० में छपा। दूसरे संस्करण में बहुत से संशोधन किए गए। इसमें संकलित कविताओं का रचनाकाल १६१८ ई० से लेकर १६२७ ई० तक का आ जाता है। काफी अन्तराल होने के कारण कविताएँ एक दूसरे से बहुत अलग हैं। दो संस्करण के पश्चात इसके छः और संस्करण प्रकाशित हुए। 'झरना' में प्रेम, प्रकृति, भक्ति और पीड़ा से सम्बंधित कवितायें हैं।

'झरना' में 'दो बूँदें', 'वसन्त', 'पावस-प्रभात', 'होली की रात', 'पाईबाग', 'पी। कहाँ ?', 'किरण', 'देवबाला', 'असन्तोष', 'दीप' आदि कविताओं में प्रकृति का सुन्दर वर्णन मिलता है।

'पाईं बाग' शीर्षक कविता में पतझड़ का चित्रण इस प्रकार से करता है -

सरसों के पीले-कागज पर वसन्त की आज्ञा पाकर।
गिरा दिये वृक्षों ने सारे पत्ते अपने सुखला कर।।
खड़े देखते राह नये कोमल किसलय की आशा में।
परिमल पूरित पवन-कंठ से, लाने की अभिलाषा में।। ६१

संध्या का चित्रण कवि इन शब्दों में करता है -

धूसर सन्ध्या चली आ रही थी अधिकार जमाने को,
अन्धकार अवसाद कालिमा लिये रहा बरसाने को ।
गिरि संकट में जीवन-सोता मन मारे चुप बहता था,
कल-कल नाद नहीं था उसमें मन की बात न कहता था ।[६२]

'रूप', 'बालू की बेला', 'चिन्ह', 'स्वप्नलोक', 'मिलन', 'भील में' आदि कविताओं में प्रेम भावना ही मुखरित हुई है ।

'भील में' शीर्षक कविता में कवि एकांत में प्रिय से मिलने का चित्रण इस प्रकार से करता है -

हाथ में हाथ लिया मैंने,
हुए वे सहसा शिथिल नितान्त ।
मलय ताड़ित किसलय कोमल,
हिल उठी उँगली, देखा; भ्रान्त ।।[६३]

नायिका के रूप सौंदर्य को इस प्रकार से प्रस्तुत करता है -

ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने,
नील नलिन से नेत्र - चपल मद से भरे,
अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से-
सुन्दर गोल कपोल, सुदर नासा बनी ।
धवल स्मित जैसे शारद घन बीच में -
(जो कि कौमुदी से रंजित है हो रहा)
चपला-सी है ग्रीवा हंसी से बढ़ी ।[६४]

इस उदाहरण में कवि ने नायिका के मुख का सुन्दर चित्रण किया है ।

प्रकृति और प्रेम के अतिरिक्त 'झरना' में भक्ति से सम्बंधित भी कुछ कवितायें हैं। जैसे- 'कुछ नहीं', 'खोलो द्वार', 'दर्शन', 'अर्चना', 'स्वभाव', 'अनुनय', 'प्रियतम', 'निवेदन', 'रत्न', 'कहो', और 'प्रार्थना' आदि भक्तिपरक कवितायें हैं।

'खोलो द्वार' में कवि ईश्वर से शरण पाने की प्रार्थना करता है।

धूल लगी है, पद काँटों से बिंधा हुआ है, दुःख अपार।
किसी तरह से भूला- भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार।।
डरो न इतना, धूलधूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार।
धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार।।
मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा प्रकाश।
मेरे ऐसे धूल कणों से, कब तेरे पद को अवकाश।
पैरों ही से लिपटा-लिपटा कर लूँगा निज पद निर्धार।
अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ, पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार।।[६५]

ईश्वर के सर्वव्यापी स्वरूप का वर्णन इस प्रकार से करता है -

जीवन जगत के, विकास विश्व वेद के हो
परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्ण काम हो।
विधि के विरोध हो, निषेध की व्यवस्था तुम
खेद भय रहित, अभेद, अभिराम हो।[६६]

वेदना से सम्बंधित भी कई उदाहरण इस कृति में मिल जाते हैं। 'विषाद' शीर्षक कविता में कवि कहता है -

किसी हृदय का यह विषाद है,
छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का विश्रान्त चरण है।।[६७]

इसी प्रकार से 'वेदने ठहरो' में कवि वेदना का चित्रण इस प्रकार से करता है -

वेदना मिलती, औषधी घुलती ।
मिलन का स्वप्न कराता भान ।
नवल निद्रा का, मधुर तन्द्रा का
व्यथा आरम्भ, वही अवसान ।। [६८]

आँसू :

'आँसू' प्रसाद जी की श्रेष्ठ कृति है । इसका पहला संस्करण सन् १६२५ ई० में छपा था । तब यह केवल १२६ छंदों की कृति थी । परन्तु बाद में आँसू का संशोधित रूप १६३३ ई० में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ । इसमें अनेक प्रकार के संशोधन किए गए । सबसे पहला संशोधन छन्दों से सम्बंधित है । पहले संस्करण में केवल १२६ छन्द थे परन्तु द्वितिय संस्करण में इनकी संख्या बढ़ाकर १६० कर दी गई । पहले संस्करण के दो छन्दों को निकाल दिया गया और छियासठ नये छन्दों को इसमें जोड़ दिया । भाषा सम्बंधी भी इसमें अनेक संशोधन किए गए । छन्दों के क्रमों में भी अनेक हेर-फेर किए गए । डॉ० नगेन्द्र परिवर्तित रूप के विषय में लिखते हैं -'इस परिवर्तन का फल यह हुआ कि-'आँसू' विरह और स्मृतिदंश का एक करूण काव्य भर था, किन्तु अब वह अंतर्जगत की रोमांचपूर्ण रहस्यानुभूतियों से भी रंजित हो गया ।' [६६]

दो संस्करण के पश्चात छः और संस्करण प्रकाशित हुए । इस कृति का तो हिन्दी साहित्य में अपना ही महत्त्व है । इस कृति के महत्त्व का ज्ञान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इन पंक्तियों से होता है । उनके मतानुसार -'आँसू की पंक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही

अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम, वेदना की दिव्य विभूति का विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का सुख और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौंदर्य और मंगल के संगम का भी आभास पाया जाता है। नियतिवाद और विषण्णवाद का भी स्वर सुनाई पड़ता है।'[७०]

आँसू में विरह से सम्बंधित अनेक छन्द हैं। इसको तो विरह काव्य की संज्ञा दी जाती है। वेदना का इतना सुन्दर चित्रण हिन्दी साहित्य में मिलना बहुत ही कठिन है। कवि विरही की दयनीय स्थिति का बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है -

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग- जल का
यह व्यर्थ साँस- चल-चल कर
करती है काम अनिल का।[७१]

कवि का अतीत बहुत ही सुखमय रहा है। अतीत की स्मृतियों का स्मरण होते ही उसका हृदय अनेक प्रकार के दुःखों से भर उठता है -

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?[७२]

परन्तु बाद में कवि वेदना के महत्त्व को स्वीकार करता हुआ कहता है कि मेरी तो यही इच्छा है कि आँसुओं की वर्षा से सिंचकर मेरी आत्मा रूपी नदी के दोनों सुख- दुःख के किनारे हमेशा हरे- भरे रहे -

आँसू वर्षा से सिंचकर
दोनों ही कूल हरा हो
उस शरद प्रसन्न नदी में
जीवन- द्रव अमल भरा हो ।[७३]

`आँसू ` में प्रकृति का भी चित्रण हुआ है । परन्तु अधिकतर इसका उपयोग मनुष्य के लिये ही किया गया है । प्रकृति सौंदर्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं । देखिये कवि को रात्रि थकी हुई प्रतीत होती है -

थक जाती थी सुख रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता,
श्रम- सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भींगा होता ।[७४]

कहीं कवि को चाँदनी अलसायी हुई नारी के समान मिलन कुंज में सोयी हुई दिखायी देती है -

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन-कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
सुख के सपनों से मेरे ।[७५]

नारी के सौंदर्य के तो अनेक उदाहरण `आँसू ` में मिलते हैं । कवि नारी के मुख, नेत्र, कपोल, बरौनी, ग्रीवा, बाल और नाक का बहुत ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करता है ।

कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

प्रिय की काली आंखों का चित्रण देखते ही बनता है -

काली आंखों में कितनी
यौवन के मद की लाली

मानिक- मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली ।[७६]

हँसने के कारण कपोलों पर पड़ने वाले गड्ढे और भौंहों के सौंदर्य का चित्रण कवि इन शब्दों में करता है -

कोमल कपोल पाली में
सीधी सादी स्मित- रेखा
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा ।[७७]

इस प्रकार से प्रसाद जी का `आँसू` काव्य सभी दृष्टियों से एक सफल काव्य है ।

लहर :

`लहर` का प्रकाशन १९३३ ई० में हुआ । इसमें कुल ३३ कविताएँ हैं । २९ कविताएँ प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति से सम्बंधित हैं और अन्तिम चार कविताएँ `अशोक की चिन्ता`, `शेर सिंह का शस्त्र समर्पण`, `पेशोला की प्रतिध्वनि`, और `प्रलय की छाया`, ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी कविताएँ हैं । डॉ० नगेन्द्र इस कृति के विषय में लिखते हैं -` लहर में प्रसाद की गीतिकला का समर्थ विकास लक्षित होता है । इसकी विषय-सूची में `क्रम` के अंतर्गत २९ गीतियाँ निर्दिष्ट हैं और कविताओं के अंतर्गत चार वर्णनात्मक कविताएँ हैं । कुल मिलाकर ये स्फुट कविताएँ तत्कालीन सन्दर्भ में `हिन्दी की आधुनिक कविता शैली` का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं ।`[७८]

`लहर` में प्रेम से सम्बंधित अनेक कविताएँ हैं । लगभग आधी कविताएँ

इस श्रेणी के अन्तर्गत आ जाती हैं । प्रेम से सम्बंधित उदाहरण प्रस्तुत हैं -

कवि उन बीते हुए दिनों का स्मरण करता है जब वह चाँदनी रात में अपनी प्रेमिका के साथ बातें किया करता था और हँसा भी करता था । परन्तु वह सब अब केवल स्वप्न बनकर ही रह गया है -

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की,
अरे खिलखिलाकर हँसते होनेवाली उन बातों की ।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया ।
जिसके अरूण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में ।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में ।[७६]

एक अन्य उदाहरण में भी कवि अपने प्रेम से भरे अतीत के दिनों का स्मरण करता है -

चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मेघ- पट पर वह विरला,
मेरी जीवन- स्मृति के जिसमें-
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।[८०]

प्रकृति सौंदर्य से संबंधित भी अनेक कविताएँ हैं जैसे- 'कोमल कुसुमों की मधुर रात,' 'अपलक जगती हो एक रात,' 'मधुर माधवी संध्या में,' 'बीती विभावरी जाग री' आदि इसी वर्ग में आती हैं । प्रकृति सौंदर्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

कवि मधुर रात्रि का सजीव चित्रण इस प्रकार से करता है -

कोमल कुसुमों की मधुर रात !
शशि-शतदल का यह सुख विकास,
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी साँसों का मलय वात ![८१]

प्रात:काल का चित्रण करते हुए कवि कहता है -

बीती विभावरी जाग री !
अंबर पनघट में डुबो रही -
तारा -घट उषा नागरी ।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई -
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।[८२]

इसके अतिरिक्त उद्बोधन गीत भी हैं । `अब जागो जीवन के प्रभात` में कवि पराधीन देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपने देश के नवयुवकों को उत्साहित करते हैं -

अब जागो जीवन के प्रभात !
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
उषा बटोरती अरूण गात ।[८३]

`वसुधा के अंचल पर` शीर्षक कविता में कवि मनुष्य को सन्देश देता है कि मनुष्य जीवन ओस कण के समान है -

वसुधा के अंचल पर
यह क्या कन-कन सा गया बिखर ?
जल शिशु की चंचल क्रीड़ा-सा,
जैसे सरसिज दल पर ।
लालसा निराशा में ढलमल
वेदना और सुख में विह्वल
यह क्या है रे ! मानव जीवन ? [८४]

अंतिम चार कविताएँ ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी कविताएँ हैं । इनमें देशप्रेम, अतीत की गरिमा और वर्तमान पर क्षोभ व्यक्त किया गया है । `शेर सिंह का शस्त्र समर्पण` में कवि ने पंजाब के वीरों की शौर्यगाथा को वर्णित किया है । सिक्खों की सेना का एक सरदार लाल सिंह अपनी सेना से विश्वासघात कर शत्रुओं (अंग्रेजों) से जा मिला । उसने बारूद के स्थान पर आटा और तोप के गोलों के स्थान पर लकड़ी के टुकड़े डाल दिये । परिणामस्वरूप सिक्ख सेनापति अंग्रेजों के सामने पराजित होने लगे । शेर सिंह को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो वह कह उठते हैं -

`ले लो यह शस्त्र है
गौरव, ग्रहण करते का रहा कर में -
अब तो न लेश मात्र ।
लाल सिंह ! जीवित कलुष पंचनद का
देख, दिये देता है
सिंहों का समूह नख दन्त आज अपना `[८५]

`प्रलय की छाया` ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है । इस कविता की शुरूआत

पूर्व -दीप्ति (Flash Back) पद्धति से होती है । गुर्जर नरेश कर्णदेव की पत्नी बहुत ही खूबसूरत थी । वह अतीत की स्मृतियों में खोयी हुई है । वह अपने विगत रूप सौंदर्य और जीवन की अनेक घटनाओं का स्मरण करती हैं । उसे अपने उस रूप और यौवन की याद आती है जब उसका यौवन मालती की कली के समान था -

दूरागत वंशी रव-
गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से ।
मेरे उस यौवन के मालती- मुकुल में ।
रंध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को- हँसाने को ।
पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगन्ध से -
कस्तूरी मृग जैसी ।
पश्चिम जलधि में,
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको,
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर ।[८६]

कमलावती को पदमावती का जौहर याद आता है । वह सोचती है -

पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी -
वह दावानल ज्वाला
जिसमें सुलतान जले ।[८७]

यवनों से युद्ध करते हुए गुर्जरेश कहीं दूर चले गये और कमलावती को शत्रु सैनिकों ने बंदी बना लिया । उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं -

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं
सुलतान के ही - उस निर्मम हृदय में,
नारी में ।
कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की ।[८८]

परन्तु उसमें भी वह सफल न हो पायी । बाद में सोचती है -

'जीवन सौभाग्य है ; जीवन अलभ्य है ।'[८६]

एक दिन संध्या को उसका शैशव अनुचर मानिक उससे प्रणय याचना करने आया तो सुलतान की तातारी दासियों ने उसे बन्दी बना लिया । सुलतान ने मानिक को मृत्यु दण्ड दे दिया परन्तु कमलावती ने उसे बचा लिया ।

गुर्जरेश कर्णदेव ने कमलावती को सन्देश भेजा कि उसे अपनी जीवन लीला समाप्त कर देनी चाहिए । परन्तु वह ऐसा भी न कर सकी । मानिक ने अलाउद्दीन की हत्या कर दी और इस रकुसरो के नाम से स्वयं राजा बन गया । कमलावती को तब अपनी असली स्थिति का ज्ञान हुआ । जो कार्य वह स्वयं करने आयी थी वह मानिक ने कर दिया । मानिक कमला की भर्त्सना करते हुए कहता है -

नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं ।[६०]

ञ कामायनी :

यह प्रसाद जी की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कृति है । हिन्दी साहित्य में इसको बहुत ही उच्च स्थान प्राप्त है । इसका पुस्तक के रूप में प्रकाशन १६३५ ई०

में हुआ था । परन्तु इससे पहले इसके कई हिस्से विभिन्न पत्रिकाओं जैसे हँस, माधुरी, सुधा आदि में छप चुके थे । प्रसाद जी ने इसे सात वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात पूरा किया था । डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार-'प्राप्त सूचनाओं के अनुसार 'कामायनी' का 'चिन्ता सर्ग' १९२८ ई० में अक्टूबर महीने में सुधा में छपा था । और पूरी 'कामायनी' १९३५ ई० में छपी । इस प्रकार सात वर्षों के निरन्तर चिन्तन और लेखन के बाद 'कामायनी' पूरी हुई ।'[९१]

प्रसाद जी ने वेदों, पुराणों, उपनिषदों में बिखरे हुए कथा सूत्रों के आधार पर 'कामायनी' की रचना की । इसकी कथा पन्द्रह सर्गों में विभाजित है । सर्गों का नामकरण मन के भावों के आधार पर किया गया है । सर्गों के नाम इस प्रकार से हैं - चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द । मनु इस कथा के नायक हैं और श्रद्धा अर्थात् कामायनी इसकी नायिका । इसी के आधार पर इस कृति का नाम 'कामायनी' रखा गया । इड़ा, मानव, आकुलि-किलात और काम इसके अन्य पात्र हैं ।

'कामायनी' की कथा का प्रारंभ जलप्लावन से बचे आदि पुरुष मनु से होता है । इस जलप्लावन में समस्त देवजाति नष्ट हो जाती है । केवल मनु ही एक नौका के सहारे शेष बचते हैं । इस नौका को महामत्स्य ने एक तीव्र थपेड़े से हिमगिरि पर पहुँचा दिया था । जब जलप्लावन समाप्त हो जाता है तब मनु पाक यज्ञ करते हैं । इसके पश्चात मनु की भेंट श्रद्धा नाम की एक सुन्दर युवती से होती है । श्रद्धा निराश और व्यथित मनु को धीरज बँधाती है तथा मनु को कर्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिए अपना जीवन तक मनु को समर्पित कर देती है । मनु और श्रद्धा जीवन की यथोचित सामग्री एकत्रित करते हैं तथा धीरे- धीरे कृषि

और पशु-पालन भी प्रारंभ कर देते हैं। दो असुर आकुलि- किलात जलप्लावन से भटकते हुए मनु के पास आते हैं तथा उन्हें यज्ञ करने के लिए उत्साहित करते हैं। श्रद्धा द्वारा पालित पशु का वध करके यज्ञ सम्पन्न होता है। मनु द्वारा किये गये हिंसापूर्ण कार्य से श्रद्धा रूठ जाती है। वह मनु को इस हिंसापूर्ण कार्य से विमुख करने का भरसक प्रयत्न करती है परन्तु उनके मुख पर तो हिंसा का रक्त लग जाता है। वे केवल मृगया ही करते हैं। उन्हें अब और कुछ करना अच्छा नहीं लगता। श्रद्धा गर्भवती हो जाती है। वह अपने भावी शिशु के लिए ऊनी वस्त्र बुनती है तथा सुन्दर कुटिया भी बनाती है। मनु को श्रद्धा का यह सब करना अच्छा नहीं लगता तथा उनके हृदय में गर्भस्थ शिशु के प्रति ईर्ष्या होती है तथा श्रद्धा को छोड़कर सारस्वत नगर पहुँचते हैं। वहीं पर उनकी भेंट उस नगर की रानी इड़ा से होती है। इड़ा इस उजड़े हुए नगर को दुबारा से बसाने का उत्तरदायित्व मनु पर सौंपती हुई उन्हें इस नगर का शासक बना देती है। नगर खूब उन्नति करता है परन्तु मनु इड़ा के साथ अनैतिक व्यवहार करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप नगर की संपूर्ण जनता में रोष फैल जाता है। मनु और प्रजा में घमासान युद्ध होता है। मनु लड़ते-लड़ते मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। यह सब स्वप्न में देखकर श्रद्धा काँप उठती है तथा अपने पुत्र कुमार के साथ मनु की खोज में निकल पड़ती है तथा वहीं पर पहुँच जाती है जहाँ पर मनु मूर्च्छावस्था में पड़े होते हैं। श्रद्धा की सेवा से मनु ठीक हो जाते हैं परन्तु ग्लानिवश मनु श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं। श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को सारस्वत नगर की शासन व्यवस्था को सँभालने के लिए इड़ा के पास छोड़कर अकेले ही मनु की खोज में निकल पड़ती है। मनु सरस्वती नदी के किनारे तपस्या करते हुए मिल जाते हैं। श्रद्धा के आते ही मनु को कैलाशपर्वत पर नटराज शंकर नृत्य करते हुए दिखाई ~~पड़ते~~ देते हैं तथा मनु श्रद्धा को नटराज शिव के चरणों तक ले चलने का आग्रह करते हैं। श्रद्धा मनु का पथ प्रदर्शन करती

हुई तीनों लोकों- भाव लोक, कर्म लोक और ज्ञान लोक का रहस्य भी उन्हें समझाती है तथा अपनी स्मिति से तीनों लोकों को एक करके इनमें समरसता स्थापित कर देती है। मनु श्रद्धा सहित अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। इड़ा और कुमार भी समस्त जनता के साथ कैलाश पर्वत की यात्रा करते आते हैं। ए उनकी भेंट श्रद्धा और मनु से होती है। सभी एक परिवार के सदस्य बन जाते हैं तथा अखण्ड एवं घने आनन्द में लीन हो जाते हैं।

'कामायनी' में प्रकृति का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं -

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी-सी उदित हुई;
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल में अन्तर्निहित हुई।[६२]

इसी प्रकार रात्रि का वर्णन देखिए -

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से -
आती चूम-चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से।[६३]

नारी सौंदर्य का भी चित्रण प्रसाद जी ने किया है। नारी के बाह्य सौंदर्य में मुख, आँख, बरौनी, नाक, कपोल, दन्तावली और ग्रीवा आदि के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं।

सुन्दर मुख का चित्रण कवि इस प्रकार से करता है -

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम ;
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम ।
या कि, नव इन्द्र नील लघु श्रृंग
फोड़कर धधक रही हो कान्त ।[६४]

उन्नत वृक्षों का अंकन कवि के शब्दों में -

खुले मसृण भुज-मूलों से
वह आमंत्रण था मिलता,
उन्नत वक्षों में आलिंगन
सुख लहरों- सा तिरता ।[६५]

नारी के अन्त: सौंदर्य को भी चित्रित किया गया है । उसमें दया, ममता, त्याग, प्रेम, समर्पण और सेवा आदि सभी गुण विद्यमान हैं ।

आत्म समर्पण की भावना -
समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकास ।[६६]

पुरुष सौंदर्य के भी उदाहरण `कामायनी` में मिल जाते हैं । मनु के सुगठित शरीर का वर्णन देखिए -

अवयव की दृढ़ माँस-पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार ;

स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।[६७]

इनके अतिरिक्त सत् और असत् प्रवृत्तियों का भी सुन्दर वर्णन है । श्रद्धा सत् प्रवृत्ति का नेतृत्व करती है जबकि असुर पुरोहित असत् प्रवृत्तियों का नेतृत्व करते हैं । परन्तु अन्त में सत् प्रवृत्ति की असत् प्रवृत्तियों पर विजय दिखायी गयी है । इसके अतिरिक्त कल्पना का भी सुन्दर विधान हुआ है ।

इस प्रकार से प्रसाद जी की कृति `कामायनी` एक महान काव्य है । डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में -` प्रसाद की अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट काव्यकृति `कामायनी` इनके प्रौढ़ि प्रकर्ष की द्योतक है । `चित्राधार` और `कानन-कुसुम` से प्रारम्भ कर `कामायनी` तक पहुँचना काव्य विकास की ऐसी यात्रा है जो सुखद होने के साथ ही श्रम साध्य और प्रतिभा सापेक्ष है । `कामायनी` का अधिकरण बहिर्जगत होकर अंतर्जगत है । कवि का अंतर्जगत व्यक्ति का अंतर्जगत और मानव जाति का अंतर्जगत् । इस प्रकार प्रसाद ने `कामायनी` को अपने चिंतन, मनन और कल्पना विधान से गूढ़ार्थी बना दिया, जबकि `कामायनी` का परंपरा स्वीकृत साहित्यिक अर्थ बहुत ही सामान्य है - काम कला या प्रेम कला । किन्तु प्रसाद की कला ने कई प्रकार के प्रतीक सन्दर्भों की अवतारणा कर `कामायनी` को सार्थकता के विभिन्न आयामों से समृद्ध कर दिया । सचमुच प्रसाद ने शैवागमों में वर्णित आनंदवाद, समरसता और प्रत्यभिज्ञा की शैव धारणाओं को अपने युग के संदर्भ में पिरोकर ऐसी `कामायनी` रच दी, जो मानवता की शाश्वत मंगलाशा को मूर्तिमान् करने वाली अग्रेसर कृति बन गयी । इसलिए अनेक दृष्टियों से एक विवादास्पद कृति होकर भी आधुनिक हिन्दी कविता की सबसे महान उपलब्धि है ।`[६८]

सन्दर्भ :

१- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० २२
२- डॉ० विनोदशंकर व्यास, प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० १५
३- डॉ० सुरेन्द्र माथुर, आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष : पृ० २
४- डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन : पृ० १०
५- डॉ० विनोदशंकर व्यास : प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० १५
६- डॉ० प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, पृ० २४
७- डॉ० विनोदशंकर व्यास : प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० ७
८- वही, पृ० ७
९- डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १२ से उद्धृत ।
१०- डॉ० सुरेन्द्र माथुर : आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष, पृ० २
११- वही- पृ० २
१२- डॉ० विनोदशंकर व्यास : प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० ११
१३- डॉ० शशि मुदीराज : छायावाद में आत्माभिव्यक्ति, पृ० १०३-१०४
१४- डॉ० विनोदशंकर व्यास : प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० १६
१५- प्रसाद : चित्राधार(प्रकृति सौंदर्य) : पृ० १२८
१६- वही- पृ० ८
१७- वही- पृ० २६
१८- वही- पृ० १७५

१६- चित्राधार : पृ० १५१
२०- वही- पृ० १५१
२१- वही- पृ० १७८
२२- वही : पृ० १७६
२३- वही : पृ० १८१
२४- वही : पृ० १८३
२५- वही : पृ० १८३
२६- वही : पृ० १८४
२७- वही : पृ० १५७
२८- वही : पृ० १४२
२६- वही : पृ० १८८
३०- वही : पृ० १८८
३१- वही : पृ० १८८
३२- वही, पृ० १८६
३३- डॉ० वीणा माथुर : प्रसाद का सौंदर्य दर्शन : पृ० ८४
३४- प्रसाद : कानन-कुसुम, पृ० २४
३५- वही, पृ० २५
३६- वही : पृ० १७
३७- वही : पृ० ६७
३८- वही : पृ० १०५
३६- वही : पृ० २६
४०- वही, पृ० १५
४१- वही : पृ० ४८

४२- वही, पृ० ४
४३- वही, पृ० १
४४- वही : पृ० ५८
४५- वही, पृ० ५
४६- वही, पृ० ६
४७- वही, पृ० ७
४८- वही, पृ० २२
४९- डॉ० गणेश खरे : युगकवि प्रसाद : पृ० ८६-८७
५०- प्रसाद : प्रेमपथिक : पृ० २४
५१- वही : पृ० ३०-३१
५२- वही, पृ० २३
५३- वही, पृ० २९
५४- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० ५७
५५- प्रसाद : करुणालय की सूचना : पृ०७
५६- प्रसाद : महाराणा का महत्त्व, पृ० ९
५७- वही, पृ० १६
५८- वही, पृ० १३
५९- वही, पृ० १८-१९
६०- वही, पृ० १५
६१- प्रसाद : झरना, पृ० ४९
६२- वही, पृ० ३३
६३- वही, पृ० ७०
६४- वही, पृ० २०
६५- वही, पृ० १९

६६- वही, पृ० ६१
६७- वही, पृ० २६
६८- वही, पृ० ८६
६९- डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ० १४९
७०- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६१८
७१- प्रसाद : आँसू, पृ० १०
७२- वही, पृ० ७
७३- वही, पृ० ७१
७४- वही, पृ० २७
७५- वही, पृ० २७
७६- वही, पृ० २१
७७- वही, पृ० २२
७८- डॉ० नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास(दशम भाग) पृ० १४९
७९- प्रसाद : लहर : पृ० ११
८०- वही, पृ० २९
८१- वही, पृ० २७
८२- वही, पृ० २१
८३- वही, पृ० २६
८४- वही, पृ० ३२
८५- वही, पृ० ५०
८६- वही, पृ० ५७-५८
८७- वही- पृ० ६१
८८- वही, पृ० ७९
८९- वही, पृ० ६६
९०- वही- पृ० ६८
९१- डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास : पृ० १५१

९२- प्रसाद : कामायनी, पृ० ३३

९३- वही, पृ० ४६

९४- वही, पृ० ५२-५३

९५- वही, पृ० १२२

९६- वही, पृ० ६१

९७- वही, पृ० १६

९८- डॉ० नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ० १५०